सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सम्यग्दर्शन क्या है ? सम्यग्दर्शन से जीवन में कैसा परिवर्तन होता है ? यह एक चिन्तनीय विषय है। इस विषय को समझे बिना हमारे जीवन में विकास नहीं हो सकता। अध्यात्म-साधक अन्य कुछ भी न समझे, किन्तु सम्यग्दर्शन के वास्तविक स्वरूप को उसे समझना होगा। सम्यग्दर्शन रूपी दिव्य-रत्न को पाया, तो सब कुछ ही पाया। यदि इस रत्न को नहीं पाया, तो कुछ भी नहीं पाया। इस चैतन्यस्वरूप आत्मा ने अनन्त बार स्वर्ग का सुख पाया और भूमण्डल पर राज-राजेश्वर का अपार वैभव पाया परन्तु इस अमूल्य रत्न के अभाव में अपनी आत्मा का ज्योतिर्मय रूप नहीं पा सका। नारकीय दुःख तथा स्वर्गीय सुख पवित्रता प्रदान नहीं कर सकते। जिस प्रकार दुःख आत्मा का एक दूषित भाव है उसी प्रकार सुख भी आत्मा का मलिन भाव है। यह भी सत्य है कि सुख आत्मा को प्रिय है और दुःख उसे अप्रिय रहा है किन्तु सुख एवं दुःख दोनों ही आत्मा के मलिन भाव हैं। आत्मा की मलिनता को दूर करने का एकमात्र अमोघ साधन यदि कोई हो सकता है तो वह सम्यग्-दर्शन है। यदि आप अध्यात्म-साधना के भव्य-मन्दिर में प्रवेश करके आत्मदेव की उपासना करना चाहते हैं—तो उस रमणीय मन्दिर में प्रविष्ट होने के लिए आपको सम्यग्दर्शन के द्वार से प्रवेश करना होगा। यदि सम्यग्दर्शन की दिव्य-ज्योति अन्तरंग और अन्तरात्मा में जगमगा उठी और अपने ज्योतिर्मयस्वरूप और अनन्तशक्ति की पहचान हो गई। सम्यग्दर्शन रूप चिन्तामणि रत्न को पाकर भयभीत आत्मा अभय हो जाता है। भय आत्मा का एक विकारी भाव है। जब तक साधक के हृदय में भय का प्रगाढ़ अन्धकार छाया रहेगा तब तक यह सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसने सम्यग्दर्शन का दिव्य प्रकाश प्राप्त कर लिया है। निश्चय ही जिसने सम्यग्दर्शन के समुज्ज्वल रत्न को उपलब्ध कर लिया है उसके जीवन में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहेगा। अतएव यह सुस्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन की साधना और आराधना अभय की साधना है,आराधना है। जो साधक कदम-कदम पर भयग्रस्त हो जाता है, वह अपनी साधना में सफलता अधिगत नहीं कर सकता। साधना के मंगलमय मार्ग पर वह बहुत आगे नहीं बढ़ सकता। मोक्ष की साधना में सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात है—निर्भय होने की। निर्भयता का उद्भव सम्यग्दर्शन से होता है।

आत्मा अनादिकाल से सदा एक समान रहा है। वह कभी भी जीव से अजीव नहीं बना है, चेतन से अचेतन नहीं बना है। इसके मौलिक स्वरूप में कभी कोई न्यूनता एवं अधिकता नहीं हुई। उसका एकांश भी कभी बना नहीं, बिगड़ा नहीं, आत्मा सदा-सदा से आत्मा ही रहा है। आत्मा कभी अनात्मा नहीं बन सकता और अनात्मा भी आत्मा नहीं बन सकता। फिर भी जीवन में किस बात की कमी है कि यह संसारी आत्मा क्यों विलखता है, क्यों रोता है ? आत्मा अविनाशी एवं अजन्मा मान लेने पर तो जीवन में अभाव नहीं रहना चाहिए। फिर भी यह मानव इधर से उधर और उधर से इधर क्यों भटकता है ? दो बातें हो सकती हैं—या तो उसे अपनी चैतन्य स्वरूप आत्मा की अमरता पर आस्था नहीं है, विश्वास नहीं है। और यदि उसे विश्वास है तो वह उस विश्वास को सुदृढ़ नहीं कर

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सका है। आत्मतत्व की अमरता पर विश्वास हो जाने पर जब तक उसकी दिव्य-उपलब्धि नहीं होती हैं तब तक जीवन-संघर्ष के मूल का उन्मूलन नहीं हो सकता। आत्मा की अमरता का परिज्ञान एक महान उपलब्धि है। परन्तु यह तथ्य भी ज्ञातव्य है कि आत्मा की सत्ता का भान और उसकी अनन्त शक्ति का परिज्ञान एक चीज नहीं है। पृथक-पृथक चीजें हैं। आत्मा की असीम, अक्षय सत्ता की प्रतीति होने पर भी, जब तक उसकी अनन्त-अनन्त शक्तियों का परिज्ञान नहीं होता और उसकी प्रयोग विधि का ज्ञान नहीं है,तो शक्ति के रहते हुए भी वह कुछ कर नहीं सकता। सम्यग्दर्शन का एक मात्र परम-उद्देश्य यही है कि आत्मा को अपनी क्षमता और शक्ति की जो विस्मृति हो गई है, उसे दूर करना है। जो असत्यपूर्व है और जिसकी मूल स्थिति नहीं है, जिसका कोई यथार्थ स्वरूप नहीं है परन्तु जिसे आत्मा ने अपनी अज्ञानता के कारण से सब कुछ जान लिया है, समझ लिया है उस भ्रान्ति को दूर करना। जैन दर्शन का स्पष्ट आघोष है कि सम्यग्दर्शन उपलब्ध करने का अर्थ यह नहीं है कि पहले कभी दर्शन का सद्भाव नहीं था और अब वह नये रूप में उत्पन्न हो गया। दर्शन को मूलतः समुत्पन्न मानने का अभिप्राय यह होगा कि एक दिन वह विनष्ट हो सकता है। सम्यग्दर्शन के उद्भव का अर्थ किसी नवीन पदार्थ का जन्म नहीं है, बल्कि सम्यग्दर्शन की समुत्पत्ति का तात्पर्य इतना ही है कि वह विकृत से अविकृत हो गया। वह पराभिमुख था, स्वाभिमुख हो गया और वह मिथ्यात्व से सम्यग् हो गया। आत्मा का जो श्रद्धान नामक गुण है, आत्मा का जो दर्शन नामक गुण है, सम्यग् और मिथ्या ये दोनों आत्मा की पर्याय हैं। मिथ्या-दर्शन एवं सम्यग्दर्शन इन दोनों में दर्शन शब्द पड़ा हुआ है। जिसका अभिप्रेत अर्थ है—दर्शन गुण कभी मिथ्या भी होता है, और सम्यग् भी होता है। मिथ्यादर्शन का फल 'संसार' है और सम्यग्दर्शन का फल मोक्ष है। किन्तु इतना अवश्य ही जानना चाहिए कि दर्शन गुण की उक्त दोनों ही पर्यायें कभी एक साथ नहीं रहती हैं। जब मिथ्या पर्याय का सद्भाव है तब सम्यग् पर्याय नहीं रहेगी और जब सम्यग् पर्याय है तब मिथ्यापर्याय कभी नहीं रह सकती। जहाँ रजनी है वहाँ रवि नहीं है और जहाँ रवि है वहाँ रजनी नहीं है। इसी प्रकार जहां दर्शन की मिथ्या पर्याय है वहाँ सम्यग् पर्याय नहीं रह सकती और जहाँ दर्शन की सम्यग् पर्याय है वहाँ मिथ्या पर्याय नहीं रहती। मेरा स्पष्ट मन्तव्य इतना ही है कि वस्तु तत्व में उत्पाद और व्यय पर्याय की अपेक्षा से है, द्रव्यदृष्टि और गुणदृष्टि से नहीं। द्रव्यदृष्टि से विराट विश्व की प्रत्येक वस्तु सत् है, असत् नहीं है क्योंकि जो वस्तु सत् है वह तीन काल में भी असत् नहीं हो सकती और जो असत् है वह भी तीन काल में सत् नहीं हो सकती, किन्तु पर्याय की अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ सत् और असत् दोनों हो सकते हैं। जब मैंने सम्यग्दर्शनरूपी दिव्य-रत्न प्राप्त कर लिया तब इसका अभिप्राय यह नहीं होगा कि पहले मेरे में सम्यग्दर्शन का सद्भाव नहीं था और आज ही वह नये रूप में उत्पन्न हो गया। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि आत्मा का जो 'दर्शन' नामक गुण आत्मा में अनन्तकाल से विद्यमान था उस दर्शन गुण की मिथ्या पर्याय को परित्याग कर मैंने उसकी सम्यग् पर्याय को प्राप्त कर लिया। आगमीय भाषा में इसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कहा जाता है। जैन दर्शन का स्पष्ट मन्तव्य है कि मूलतः कोई नवीन चीज प्राप्त करने जैसी बात नहीं है बल्कि जो सदा से विद्यमान रही है उसको शुद्धतम रूप से जानने-पहचानने और देखने की बात है। सम्यग्दर्शन की उपलब्धि का यही अभीष्ट अर्थ है।

अध्यात्मसाधक के जीवन में सम्यग्दर्शन की कितनी गुरुता है, कितनी महिमा है, और कितनी गरिमा है—शास्त्र इसके प्रमाण हैं। सम्यग्दर्शन वस्तुतः एक वह विशिष्ट कला है, जिससे आत्मा स्व और पर के भेद-विज्ञान को प्राप्त कर लेता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। सम्यग्दर्शन एक वह दिव्य कला है जिसके उपयोग और प्रयोग से आत्मा संसार के समग्र बन्धनों से मुक्त हो जाता है। संसार के दुःख और क्लेश से सर्वथा रहित हो जाता है। सम्यग्दर्शन की विशिष्ट उपलब्धि होते ही यह पूर्ण रूप से पता चलने लगता है कि आत्मा में असीम क्षमता है, अपार शक्ति है और अमित बल है। जब आत्मा अपने आपको जड़ न समझकर चेतन समझने लगता है। तब सभी प्रकार की सिद्धियों के द्वार उद्घाटित हो जाते हैं। जरा अपने भीतर झांककर देखना है, और अपने अन्तर्हृदय की अतल गहराई में उतरकर सुदृढ़ विश्वास के साथ कहना है कि मैं केवल अविनाशी आत्मा हूँ, अन्य कुछ भी नहीं। मैं केवल चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ, जड़ नहीं। मैं सदा-सर्वदा शाश्वत हूँ जल तरंगवत् क्षणभंगुर नहीं। न मेरा कभी जन्म होता है और न कभी मरण होता है। जन्म मृत्यु मेरे नहीं है। ये तो शरीर के खेल है। देह का जन्म होता है और देह की मृत्यु होती है। जन्मने और मरने वाला मैं नहीं हूँ, मेरा यह विनाशशील शरीर है। जिस साधक ने अपनी आध्यात्मिक साधना के माध्यम से अपने सहज-विश्वास और स्वाभाविक सुबोध को उपलब्ध कर लिया है वह यही कहता है कि मैं अनन्त हूँ, मैं अजर हूँ, मैं अमर हूँ, मैं शाश्वत हूँ, मैं सर्वशक्तिमान हूँ। वास्तव में मैं आत्मा हूँ यह दृढ़ विश्वास करना ही सम्यग्दर्शन है। अपनी अखण्ड सत्ता की स्पष्ट रूप से प्रतीति होना ही आध्यात्मिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ और सर्व ज्येष्ठ उपलब्धि है। अध्यात्म साधना के क्षेत्र में सम्यग्ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ज्ञान मुक्ति-प्राप्ति का एक अमोघ साधन है। अज्ञान और वासना के सघन अरण्य को जलाकर भस्मसात् करने वाला दावानल सम्यग्ज्ञान ही है। ज्ञान का अर्थ यहाँ किसी ग्रन्थ का ज्ञान नहीं है अपने ज्योतिर्मय स्वरूप का बोध ही सच्चा ज्ञान है, यथार्थ ज्ञान है। "मैं आत्मा हूँ" यह ज्ञान जिस साधक को हो गया है उसे फिर किसी भी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह आत्म-स्वरूप का ज्ञान तभी सम्भव है जब कि उससे पूर्व सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हो चुकी हो क्योंकि सम्यग्दर्शन के अभाव में जैनत्व का एक अंश भी सम्प्राप्त नहीं हो सकता। यदि सम्यग्दर्शन की एक प्रकाश किरण भी जीवन क्षितिज पर चमक-दमक जाती है तो गहन से भी गहन गर्त में पतित आत्मा के अभ्युदय की आशा हो जाती है। सम्यग्दर्शन की उस दिव्य-किरण का प्रकाश भले ही कितना मन्द क्यों न हो परन्तु उसमें आत्मा को परमात्मा बनाने की शक्ति होती है, क्षमता होती है। हमें यह भी याद रखना है कि उस निरंजन और निर्विकार परमात्मा को खोजने के लिए कहीं इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने अन्तरात्मा में ही है। जिस प्रकार घनघोर घटाओं के मध्य, विद्युत की क्षीण-रेखा के चमक जाने पर क्षण भर के लिए यत्र-तत्र सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार एक क्षण-मात्र के लिए, सम्यग्दर्शन की दिव्य ज्योति के प्रगट हो जाने पर कभी न कभी आत्मा का समुद्धार हो ही जायेगा। बिजली की चमक में सब कुछ दृष्टिगोचर हो जाता है उसी प्रकार परमात्म-तत्व के प्रकाश की एक प्रकाश-किरण भी अन्तर्मन में जगमगा उठती है तो फिर भले ही वह कुछ क्षण के लिए ही क्यों न हो उसके प्रकाश में मिथ्याज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है। ज्ञान को सम्यग्ज्ञान बनाने वाला सम्यग्दर्शन ही है। यह सम्यग्दर्शन अध्यात्म साधना का प्राणतत्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org